डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र, माधव
एम०ए०, पी-एच० डी०, निदेशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

धर्म का वास्तविक स्वरूप

धर्म के तत्त्व के सम्बन्ध में विभिन्न मत पंथ सम्प्रदायों में नाना प्रकार के वितंडावाद आज भी प्रचलित हैं और शायद सदा प्रचलित रहेंगे. इसमें मुख्य हेतु कदाचित् यही है कि प्रत्येक मत-पंथ या सम्प्रदाय के व्यक्ति अपने-अपने मत पंथ या सम्प्रदाय के संकीर्ण दायरे से बाहर की बातें सोच समझ नहीं पाते या सोचना समझना नहीं चाहते. इसी-लिए धर्म के क्षेत्र में प्रायः कूपमंडूकता का ही बोल-बाला है और इसीलिए धर्म के नाम पर संसार में इतना अधर्म हो रहा है. और इतिहास साक्षी है कि धर्म के नाम पर क्या-क्या अनाचार और रक्तपात नहीं हुए. अस्तु, आश्चर्य नहीं कि आज के प्रगतिशील व्यक्ति, धर्म का नाम सुन-सुन कर नाक भौंह सिकड़ने लगते हैं और इसे अफीम की संज्ञा दे बैठते हैं. उनकी दृष्टि में धर्म एक नशा है जिसका सेवन करने वाले धर्मांध हो कर सब कुकर्म करने पर उतारु हो जाते हैं और जीवन के सामान्य शिष्टाचार के नियमों से भी आँखें बन्द कर लेते हैं.

धर्म शब्द का यथार्थ पर्यायवाची शब्द न अंग्रेजी भाषा में है, न विश्व की किसी भी अन्य भाषा में है. धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है धारण करना, पोषण करना. वैशेषिक दर्शन के अनुसार धर्म की परिभाषा है. 'यतोऽ-भ्युदयनिःश्रेयस्-सिद्धिः सधर्मः' अर्थात् जिससे लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक निःश्रेयस् (कल्याण अथवा मोक्ष) की सिद्धि हो वही धर्म है. महर्षि जैमिनी धर्म की परिभाषा एक व्यापक परिवेश में करते हैं—"चोदनालक्षणो धर्मः" अर्थात् श्रुतिस्मृति द्वारा बोधित अर्थ ही धर्म है. सच तो यह है कि श्रुति स्मृति ही धर्म का प्राण है और उनके वचन ही धर्ममार्ग में अग्रसर होने की प्रेरणा देते रहते हैं :

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो, धर्म-शास्त्रं तु वै स्मृतिः,
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां हि धर्मो निर्बभौ।

परन्तु श्रुतियाँ भी अनेक हैं और स्मृतियां भी अनेक हैं. और उनमें मतैक्य नहीं. वे भिन्न-भिन्न मतों का प्रतिपादन करती हैं, ऐसी अवस्था में विचारक या धर्मसाधक क्या करें ? ऐसी अवस्था में 'महाजनो ये न गतः स पंथा' जिस मार्ग से महापुरुष चलते हों वही निष्कंटक है. यहां महापुरुष का अर्थ है श्रेष्ठजन, आदर्श, धर्मप्राण व्यक्ति, जिसने अपने लोक-परलोक को संवार लिया है. जो मुक्त है या मोक्षार्थी है, न कि लौकिक पद मर्यादा या मान-प्रतिष्ठा के कारण महान् बन बैठा है. ऐसे ही महापुरुष सूत्र बतला गये हैं जिनका पथदर्शन मानवता को कल्याणपथ पर अग्रसर करता रहेगा. वे कहते हैं :

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्,
आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्।
विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यं अद्वेषरागिभिः,
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत।
श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः,
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्।

अर्थात् धर्म का यह रहस्य सुनो और सुनकर हृदय में धारण करो जिसे अपने लिए बुरा समझते हो उसे दूसरों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए मत करो. विद्वानों ने, संतों ने, और सदा रागद्वेष से मुक्त वीतराग पुरुषों ने जिसका सेवन किया है और जिसे हृदय ने मान लिया है वही धर्म है, उसे जानो. करोड़ों ग्रंथों में जो कहा गया है उसे मैं आधे श्लोक में कहूंगा : दूसरों का भला करने से पुण्य होता है और बुरा करने से पाप. गोस्वामी तुलसीदासजी इसी को कहते हैं :

परहित सरिस धरम नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई ।

सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यम, दिन और रात सांझ और सबेरा और स्वयं धर्म मनुष्य के आचरण को जानते हैं, यानी मनुष्य अपना कार्य विचार या कर्म इन से छिपा नहीं सकता.

'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां' का उद्घाटन ऋषियों ने, संतों ने, मुनियों ने अपने अनुभूत आचरण और आचरित अनुभय के आधार पर यत्र तत्र किया है. मनु ने चारों वर्णों के लिए बहुत ही संक्षेप में धर्माचरण का संकेत किया है :

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ,
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ।

हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्रता का पालन करना, इन्द्रियों पर काबू रखना—मनुने चारों वर्ण के लिये थोड़े में यह धर्म कहा है. अहिंसा का अर्थ केवल 'सिंसा न करना' ही नहीं है. उसका वास्तविक अर्थ है—'आत्मवत्सर्वभूतेषु.'' इसी प्रकार सत्यं का अर्थ केवल सच बोलने तक ही सीमित नहीं, उसका अर्थ है सत्चित्आनन्द स्वरूप परमात्मा में स्थित होकर आचरण करना. इसी प्रकार अस्तेय, शौच और इन्द्रियनिग्रह भी व्यापक अर्थों में व्यवहृत हुये हैं. परन्तु इन शब्दों का जो सामान्य भाव है उसी का अनुसरण करने पर विशिष्ट भावलोक के द्वार उन्मुक्त होंगे जहां धर्म से वस्तुतः साक्षात्कार होगा. जो ज्ञानी और तत्त्वदर्शी हैं उनके चरणों में आदर और भक्ति पूर्वक साष्टांग पणिपात द्वारा, उनकी अहैतुकी सेवा में अपने को लीनकर के तथा अत्यन्त विनम्रतापूर्वक जिज्ञासुभाव से उनसे परिप्रश्न करके धर्म का तत्त्व जाना जा सकता है. ऐसा गीता उपदेश करती है :

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ,
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ।

श्वेम्बर उपनिषद् में ईश्वरीय शक्ति से अनुप्राणित महर्षि ने विश्व के सामने खड़े होकर उसी अमर सन्देश की घोषणा की :

श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः, आये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्, आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति, नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय ।

हे अमृतपुत्र ! अनादि पुरातन पुरुष को पहचानना ही अज्ञान एवं माया से परे जाना है. केवल उस पुरुष को जानकर ही लोग ज्ञानी बन सकते हैं, मृत्यु के चक्कर से छूट सकते हैं—और कोई मार्ग है नहीं. यह निर्मल ज्ञान ही धर्म की आत्मा है. सच तो यह कि संसार में ज्ञान के सदृश पवित्र करने वाला तत्त्व निःसन्देह कुछ भी नहीं है, छान्दोग्य उपनिषद् में इसी सत्य का समर्थन है :

'सच एषोणिमा एतात्म्य मिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि—श्वेत केतो इति.'

अपनी आत्मा को जानना पहचानना और उसी में स्थित होकर आचरण करना—'स्वस्य च प्रियमात्मनः' यही धर्माचरण का केन्द्र-बिन्दु है. कठोपनिषद् में उस पुरुष के स्वरूप के सम्बन्ध में आया है :

मयादग्निस्तपति मयात्तपति सूर्यः, मयादिन्द्रश्च वायुश्य मृत्युर्धावति पंचमः ।

उसी के भय से अग्नि तपती है, उसी के भय से सूर्य प्रकाश देता है—उसी के भय से इन्द्र और वायु अपना काम करते हैं और उसी के भय से मृत्यु भी भयभीत है.

इस प्रकार धर्म की आत्मा का जब साक्षात्कार हो जाता है तो सभी विभिन्न धर्मों, मतों, पंथों, सम्प्रदायों में उसी एक

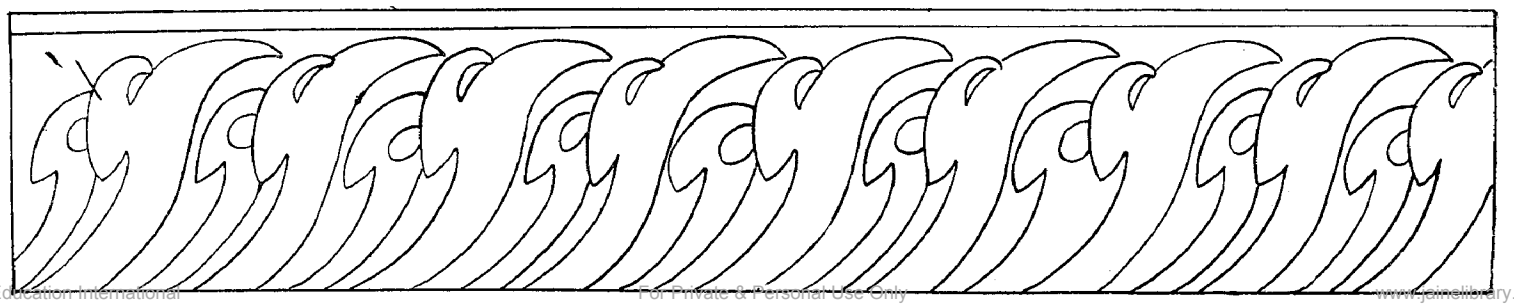

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का अखण्ड अविच्छिन्न सूत्र हाथ लग जाता है और समस्त विनाशशीलों में अविनाशीतत्त्व—'विनश्यत्सु अविनश्यन्तं' का स्वर्णसूत्र हाथ लग जाने पर मानव विश्वकल्याण की कामना से ओतप्रोत होकर इसका उद्घोष करता है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्।
दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्,
शान्तः मुच्येत् बंधेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्।

संसार में सभी जीवजन्तु कीट पतंग स्थावर जंगम सुखीहों, सभी निरामय हों, सभी कल्याण कामी मंगलदृष्टिसम्पन्न हों किसी को भी किसी प्रकार दुख न हो. दुर्जनों में सज्जनता आ जाय, सज्जनों को शान्ति प्राप्त हो, जो शान्त हैं वे बंधनों से मुक्त हो जाएँ और जो मुक्त हैं वे मायाबद्ध जीवों को मुक्त करें.

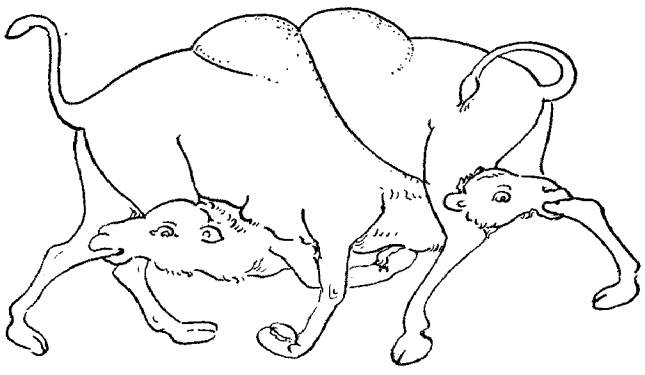

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org